कम्युनिस्ट पार्टी-संगठनों के काम को सर्वहारा वर्ग में केन्द्रित करो!

मानव इतिहास में केवल एक ही वर्ग ऐसा है, जो वर्ग-विहीन, राज्य-विहीन समाज बनाने की क्षमताएं रखता है। कम्युनिस्ट समाज का निर्माण सर्वहारा के अलावा और कोई वर्ग नहीं कर सकता है। कम्युनिस्ट समाज की स्थापना करके ही सर्वहारा सही मायनों में मुक्त हो पाएगा। इसके पहले के सभी संघर्षों में अन्य वर्गों की तो मुक्ति हो जाती है, लेकिन सर्वहारा की नहीं। सर्वहारा की मुक्ति सबसे बाद में होगी। मुक्ति के संघर्ष में वह सबसे दृढ़, सबसे लम्बे समय तक क्षुब्ध रहने वाला सबसे क्रान्तिकारी वर्ग है। कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग की पार्टी है, किसी अन्य क्रान्तिकारी वर्ग की पार्टी नहीं। यह सर्वहारा वर्ग का अगुवा दस्ता है और उसके संगठन का उच्चतम रूप है। परन्तु वर्ग-सचेत सर्वहारा जानता है कि वह अपने ऐतिहासिक मिशन की प्राप्ति अकेले नहीं कर सकता है। इस लम्बे सफ़र में उसे सहयोगियों की, अन्य क्रान्तिकारी वर्गों के सहयोग की ज़रूरत है। सर्वहारा उनका तब तक सहयोग लेता है, जब तक वे साथ चलने को तैयार हों। सर्वहारा की पार्टी, इन सहयोगी वर्गों को संगठित करने का काम करती है।

कम्युनिस्टों के बीच यह बात निर्विवाद है कि कम्युनिस्ट पार्टी को समाज के सभी क्रान्तिकारी वर्गों और तबक़ों के बीच काम करना चाहिए, और इन सभी वर्गों/तबक़ों के सदस्यों का सर्वहाराकरण करते हुए इन्हें अपनी कतारों में भर्ती करना चाहिए। दुनिया के कम्युनिस्ट ऐसा करते भी रहे हैं। परन्तु इस बात का यह मतलब नहीं निकाला जा सकता कि कम्युनिस्ट सभी क्रान्तिकारी वर्गों/तबक़ों को एक समान नज़र से देखते हैं, और अपनी प्राथमिकताएं नहीं तय करते। कम्युनिस्ट, इंक़लाब की आवश्यकताओं और अपनी ताक़त के मूल्यांकन के आधार पर हमेशा ही अपनी प्राथमिकताएं तय करते रहे हैं। किस क्रान्तिकारी वर्ग के बीच कम्युनिस्ट पार्टी के काम को मूलतः केंन्द्रित किया जाए? यह सवाल दुनिया की कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए एक अहम् सवाल रहा है और आज भी है। इस के सही जवाब पर सच्ची क्रान्ति का चरित्र, उसके सफल होने व टिक पाने की सम्भावनाएं,...बहुत कुछ निर्भर करती है। दुनिया के कम्युनिस्ट पूर्ण प्रतिबद्धता से इस सवाल को तय करते आये हैं।

जिस देश में एक एकीकृत कम्युनिस्ट पार्टी न हो और कम्युनिस्ट अनेक छोटे-छोटे पूर्व-पार्टी संगठनों में ही सम्बद्ध हों, वहाँ के क्रान्तिकारियों को और भी सिद्धहस्त हो कर, अपनी प्राथमिकताएं तय करनी पड़ती हैं। क्योंकि चाह कर भी ये छोटे-छोटे पूर्व-पार्टी संगठन न तो भौगोलिक तौर पर पूरे देश में काम कर सकते हैं और न ही समाज के सभी क्रान्तिकारी वर्गों/तबक़ों में काम के लिए कार्यकर्ता और संसाधन उपलब्ध करवा सकते हैं। इंक़लाब की आवश्यकताओं और अपनी ताक़त के वस्तुनिष्ठ आकलन के आधार पर पूर्ण निष्ठुरता से अपनी प्राथमिकताएं तय करना हमारी मजबूरी और ज़रूरत है। भारत का कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन ऐसी ही स्थिति का सामना कर रहा है। इस आलेख में हम भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के विभिन्न पूर्व-पार्टी संगठनों की ताक़त का कोई लेखा-जोखा नहीं लेंगे, परन्तु यहाँ हम भारतीय समाज की बनावट और भारतीय क्रान्ति की आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में इस अहम् सवाल का उत्तर देने की कोशिश करेंगे।

आज भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नव-जनवादी क्रान्ति को अपना न्यूनतम कार्यक्रम मानते हैं। इन साथियों की सोच के हिसाब से कृषि क्रान्ति भारतीय इंक़लाब की धुरी है (agrarian revolution is the axis)। ये सारी पेशल को अपने कार्य का आधार मानते हैं और गाँव से शहरों को घेरने की बात सोचते हैं। नव जनवादी क्रान्ति के मॉडल के अनुसार सर्वहारा इस क्रांति की नेतृत्वकारी शक्ति है और किसान मुख्य लड़ाकू शक्ति (the proletariat is the leading force and peasantry the main fighting force)। इस मॉडल में आर्थिक तौर पर इस क्रान्ति का लक्ष्य साम्राज्यवादियों, सामंतों, प्रतिक्रियावादियों के समान बड़े कारख़ानों और पूंजी के राष्ट्रीयकरण तथा जमींदारों की भूमि का किसानों के बीच बँटवारा होना जबकि आम तौर पर उद्योग (निजी उद्योग) रहेंगे और धनी किसान अर्थव्यवस्था का उन्मूलन नहीं होगा। प्रतिक्रियावादी राजसत्ता को उखाड़

फेंकने के बाद विशुद्ध सर्वहारा की तानाशाही स्थापित नहीं की जाएगी बल्कि क्रान्तिकारी वर्गों (मजदूरों, किसानों, शहरी निम्न-पूंजीपति वर्ग.....) की सांझी तानाशाही स्थापित की जायेगी। बहुत सहज है कि इस मॉडल को मानने वाले साथी किसानों के बीच अपने कार्य को मुख्यतः केन्द्रित करें, जैसा कि माओ और उनके साथियों ने चीन में किया।

आज भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का एक छोटा हिस्सा समाजवादी क्रान्ति के मॉडल को अपना न्यूनतम कार्यक्रम मानता है। यह हिस्सा कृषि क्रान्ति को भारतीय इंकलाब की धुरी नहीं मानता है। इस मॉडल के अनुसार भावी भारतीय क्रान्ति किसान क्रान्ति न होकर सर्वहारा क्रांति होगी। इस मॉडल में धनी किसान क्रांति के ढुलमुल दोस्त न होकर क्रान्ति के दुश्मन हैं। इस मॉडल के तहत प्रतिक्रियादादी राजसत्ता को उखाड़ फेंकने के बाद सर्वहारा तानाशाही कायम की जायेगी। रणनीतिक तौर पर इस मॉडल को मानने वाले दीर्घकालिक लोकयुद्ध के बजाए राजसत्ता पर कब्जे के लिए आम बगावत (insurrection) का रास्ता अपनाने में विश्वास रखते हैं। बहुत सहज सी बात है कि इस मॉडल को मानने वाले साथियों की नजर में पार्टी-संगठन का व्यावहारिक काम किसानों के बजाए मुख्यतः सर्वहारा में केन्द्रित होना चाहिए। लेकिन समाजवादी क्रान्ति के मॉडल को अपना न्यूनतम कार्यक्रम मानने वाले कुछ साथी भी मजदूरों के बीच व्यावहारिक काम की तुलना में किसानों के बीच व्यावहारिक काम की ज्यादा अहमियत मानते हैं। ऐसे में यह सवाल कि हमें अपनी सीमित शक्तियाँ मजदूरों में मुख्यतः केन्द्रित करनी चाहिए या किसानों में, हर हालत में आज के, 21 वीं सदी के भारत में विभिन्न वर्गों की स्थिति का लेखा-जोखा लेने के लिए बाध्य करता है। हमारी प्राथमिकता मजदूर होने चाहिए या किसान? आज, भारतीय इंकलाब के लिए यह अहम सवाल है जिसे हल किया जाना निहायत ज़रूरी है।

लेकिन इस पर बहस आगे बढ़े, कोई वस्तुनिष्ठ विश्लेषण हो और सही नतीजे निकाले जा सकें, इससे पहले ही भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के कुछ सदस्यों ने एक विजातीय थीसिस पेश करके इस अहम सवाल को ही दरकिनार करने की कोशिश की है। इन लोगों का कहना है कि यह बात ही बेतुकी है कि पार्टी-संगठन में भर्ती समाज के किस वर्ग या किस तबके से हो रही है। इन लोगों की नजर में मूल बात यह है कि भर्ती होने वाले अगुवा तत्व हों और मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को स्वीकार करते हों। अगर इस थीसिस को मान लिया जाये तो मेहनतकश वर्गों के बीच व्यावहारिक काम कभी पार्टी की प्राथमिकताओं में नहीं आयेगा, और पार्टी-संगठनों के भीतर सर्वहारा वर्ग चेतना का विकास ही नहीं हो पायेगा। यह विजातीय थीसिस भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए बहुत खतरनाक है, लेकिन इसकी आलोचना को हम इस आलेख का मूल विषय नहीं बना सकते। यहाँ हम, इस थीसिस को खारिज करने के लिए 1905 में रूसी सामाजिक-जनवादी लेबर पार्टी की तीसरी कांग्रेस में लेनिन द्वारा कही गयी एक महत्वपूर्ण बात उद्धृत करेंगे;

> "मजदूरों का कमेटियों में रखा जाना महज एक शिक्षाशास्त्रीय कार्यभार नहीं है, यह एक **राजनीतिक कार्यभार है।** मजदूरों के पास सहज वर्गीय अन्तः बोध होता है और कुछ राजनीतिक अनुभव प्राप्त करने के बाद वे पक्के सामाजिक- जनवादी बनते हैं। **मेरी यह दृढ़ राय है कि हमारी कमेटियों में दो बुद्धिजीवियों के साथ आठ मजदूर रखे जायें।**" (अनुवाद व शब्दों पर जोर हमारा)

पार्टी में किस वर्ग के सदस्यों की भरती हो और पार्टी की कमेटियों में किस वर्ग के लोगों की अक्सरियत हो, यह लेनिन के लिए अहम् राजनीतिक सवाल था। लेनिन इन "अगुवा तत्वों" को चार-चार मजदूरों से घेर कर रखने के पक्ष में थे! बहरहाल यहाँ इतना ही।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की सामान्य अवधारणायें

आधुनिक समाजों के इन दो बुनियादी मेहनतकश वर्गों - मजदूरों और किसानों—के सम्बन्ध में मार्क्स-एंगेल्स के जमाने से ही अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की समझ साफ रही है। कम्युनिस्ट सर्वहारा को एक ऐसा

> "मेहनतकश वर्ग जो कि **अर्थव्यवस्था के सबसे विकसित रूप**, बड़े पैमाने के उत्पादन, से जुड़ा हुआ, और जिस कारण से उसके सामने एक महान भविष्य है....." (History of the CPSU, Kamgar Prakashan, 1985 ed, pp: 13, अनुवाद और शब्दों पर जोर हमारा) मानते आये हैं। "मार्क्स और एंगेल्स ने सिखाया था कि **औद्योगिक सर्वहारा** पूंजीवादी समाज में सबसे क्रान्तिकारी अतः सबसे विकसित वर्ग है। केवल, सर्वहारा जैसा वर्ग ही पूंजीवाद से परेशान

> समस्त शक्तियों को अपने इर्द-गिर्द गोलबन्द करके, पूंजीवाद को ध्वस्त करने में उनकी अगुवाई कर सकता है। परन्तु पुरानी दुनिया को समाप्त करने और एक नया वर्ग-विहीन समाज बनाने के लिए सर्वहारा के पास **अपनी** मजदूर पार्टी होनी चाहिए जिसे मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी का नाम दिया"। (History of the CPSU, Kamgar Prakashan, 1985 ed, pp : 9, अनुवाद और शब्दों पर जोर हमारा)।

1905-1907 की क्रान्ति के अनुभवों के आईने में अपनी मशहूर कृति The Development of Capitalism in Russia की भूमिका लिखते हुए लेनिन बताते हैं:

> "आंकड़ों के आलोचनात्मक विश्लेषण और आर्थिक छान-बीन के आधार पर इस कृति में सामाजिक-आर्थिक तंत्र का जो विश्लेषण रखा गया है, और परिणामस्वरूप रूस की वर्गीय संरचना की जो तस्वीर पेश की गयी है उसकी सत्यता क्रान्ति के दौरान विभिन्न वर्गों की राजनीतिक कार्यवाहियों से पुष्ट हो चुकी है। **सर्वहारा की नेतृत्वकारी भूमिका पूरी तरह से उजागर हुई।** यह भी सुस्पष्ट हुआ कि **पूरी आबादी में अपनी गिनती से कई गुना ज्यादा ताकत सर्वहारा इतिहास निर्माण में प्रदर्शित करता है।**" (The Development of Capitalism in Russia, Progress Pub., 1977 Ed, पृष्ठ: 31, अनुवाद व शब्दों पर जोर हमारा)।

मार्क्स-एंगेल्स के जमाने से, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में औद्योगिक सर्वहारा के वर्ग चरित्र के बारे में यही राय रही है कि बड़े पैमाने के पूंजीवादी उत्पादन से जुड़े होने की वजह से यह मानव इतिहास का सबसे अग्रगामी वर्ग है, कि यह क्रान्ति के लिये अन्य वर्गों को गोलबन्द करने की क्षमता रखता है, और कि ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में इसकी ताकत इसकी गिनती के अनुपात में बहुत ज्यादा है। अतः कम्युनिस्ट इस वर्ग को प्राथमिकता में लामबन्द करते रहे हैं, और इसकी पहलकदमी को खुला रखने के लिए इसके स्वतंत्र संगठन बनाते रहे हैं। न केवल 1905-1907 की असफल क्रान्ति बल्कि 1917 की दोनों क्रान्तियों और 20 वीं सदी के तमाम वर्ग संघर्षों ने सर्वहारा के वर्ग चरित्र के बारे में दुनिया के कम्युनिस्टों के उक्त आकलन को सही ठहराया है।

जहाँ तक दूसरे मेहनतकश वर्ग, किसान वर्ग की बात है, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन इस वर्ग को मजदूर वर्ग का सबसे करीबी और सबसे विश्वसनीय सहयोगी मानता रहा है, लेकिन किसानों की चेतना व क्रान्तिकारिता को कभी भी मजदूरों के समतुल्य नहीं माना गया। दुनिया के कम्युनिस्टों का आकलन रहा है कि किसान

> "गिनती में अपनी बड़ी तादाद के बावजूद, एक ऐसा मेहनतकश वर्ग हैं जो कि **अर्थव्यवस्था के सबसे पिछड़े रूप,** छोटे-पैमाने के उत्पादन से जुड़े हुए हैं, जिस कारण से **इस वर्ग** का कोई उज्जवल भविष्य नहीं है। .....छितराये हुए होने की वजह से, यह सर्वहारा की तुलना में अपेक्षाकृत ज्यादा कठिनता से संगठनबद्ध होता है, और चूंकि यह छोटे मालिकों का समूह होता है अतः यह क्रान्तिकारी आन्दोलन से सर्वहारा की तुलना में अपेक्षाकृत ज्यादा कठिनाई से जुड़ता है।" (History of the CPSU, Kamgar Prakashan, 1985 Ed, पृष्ठ : 13, अनुवाद व शब्दों पर जोर हमारा)।

1907 में रूस के किसानों की चर्चा करते हुए, लेनिन किसानों के चरित्र की और बारीक व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं:

> "..... क्रान्ति और अधिक स्पष्टता के साथ किसानों की दोहरी स्थिति और दोहरी भूमिका को उजागर कर रही है। जहाँ एक ओर बेगार अर्थव्यवस्था के ढेरों अवशेष और भूदासता के तमाम अवशेष, गरीब किसान की अभूतपूर्व कंगाली और तबाही, क्रान्तिकारी किसान आन्दोलन के गहरे स्रोत, एक समूह के बतौर किसानों के क्रान्तिकारी चरित्र की गहरी जड़ों को पूर्ण रूप से स्पष्ट करते हैं। वहीं दूसरी ओर क्रान्ति के दौरान विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के किरदार, विभिन्न विचारधारात्मक-राजनीतिक रूझानों ने इस समूह के भीतर मौजूद परस्पर विरोधी वर्गीय संरचनाओं, **इसके निम्न पूंजीवादी चरित्र,** इसके भीतर मालिक व सर्वहारा प्रवृतियों के अन्तर्द्वन्द को उजागर कर दिया है। **प्रति-क्रान्तिकारी पूंजीपति वर्ग और क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के बीच छोटे फटीचर मालिक का ढुलमुलपन उतनी ही अपरिहार्य बात है** जितनी यह परिघटना कि हर पूँजीवादी समाज में छोटे मालिकों का एक बहुत ही छोटा अल्पमत दरअसल अमीर हो जाता है, 'संसार में आगे बढ़ जाता है', बुर्जुआ बन जाता है, जबकि इनका विशाल बहुमत या तो पूर्णतः तबाह हो कर उजरती-मजदूर या कंगाल हो जाता है या फिर सर्वहाराओं जैसा ही जीवन जीने के लिए बाध्य होता है।" (Development of Capitalism in Russia, Progress Pub., 1977 Ed, पृष्ठ : 31-32, अनुवाद व शब्दों पर जोर हमारा)।

यहाँ स्पष्ट है कि दुनिया के कम्युनिस्ट किसानों की क्रान्तिकारिता को स्वीकारने के बावजूद इनके पिछड़ेपन, इनके निम्न-पूँजीवादी चरित्र, मालिक होने के नाते इनके बुर्जुआ बनने के सपने ..... को इस समूह की कमजोरियों के बतौर चिन्हित करते आये हैं। दुनिया के कम्युनिस्ट छोटे से छोटे और दरिद्र से दरिद्र किसान को इन कमजोरियों से परे नहीं मानते रहे हैं। वे कम्युनिस्ट पार्टियों में किसानों को सदस्यता देने के लिए तो तैयार रहे हैं, परन्तु इनके सर्वहारा रूपान्तरण की शर्त पर। अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन मजदूरों व किसानों की सांझी पार्टियों के निर्माण के खिलाफ रहा है। एक दौर में जिन देशों के कम्युनिस्टों से ऐसी गलतियाँ हुईं -- वर्कर्स एण्ड पीसेन्ट्स पार्टी बनाने की गलती – उन गलतियों को समय रहते ठीक किया गया। इंकलाब को सफलतापूर्वक अंजाम देने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी निम्न-पूँजीवादी दुलमुलता की कमजोरियां लिए हुए नहीं हो सकती, उसे सर्वहारा दृढ़ता व फौलादी इरादे की दरकार होती है।

किसानों के भ्रमों और भ्रांतियों के कारण लेनिन ग्रामीण सर्वहारा को भी स्वतंत्र रूप से संगठित करने पर बल देते हैं। वे कहते हैं:

> ".....तीसरी कांग्रेस के ..... प्रस्ताव में एक तो **"किसान आन्दोलन के क्रान्तिकारी-जनवादी सार से सारी प्रतिगामी मिलावटें दूर कर देने की"** और दूसरे **"हर हालत में और सभी परिस्थितियों में देहाती सर्वहारा के स्वतंत्र संगठन"** की आवश्यकता की बात कही गयी है। ये हमारी हिदायतें हैं। ....." (लेनिन, 'किसान आन्दोलन के प्रति सामाजिक-जनवाद का रुख,' संकलित रचनाएं, खण्ड 3, प्रगति प्रकाशन, 1981 संस्करण, पृष्ठ 192, जोर मूल में)।

यहाँ गौर करने की बात है कि लेनिन उक्त हिदायतें तब नहीं दे रहे हैं जब वे रूस को समाजवादी क्रान्ति के लिए गोलबन्द कर रहे हैं बल्कि ये बातें 1905 की हैं जब से स्वयं मानते हैं कि रूस बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के चरण में है, जब वे समस्त जनता को ज़ारशाही के खिलाफ गोलबन्द कर रहे हैं, जब किसान समुदाय के बीच बुर्जुआ व सर्वहारा के बीच का अन्तर्विरोध अभी तीखा नहीं हुआ है, जब पूरा किसान समुदाय क्रान्ति के लिए दृढ़ होता है। समाजवादी क्रान्ति की अवस्था में तो सर्वहारा का स्वतंत्र संगठन बहुत सहज ही प्राथमिकता बन जाता है।

बोल्शेविक क्रान्ति ने मार्क्सवादियों की सामान्य अवधारणाओं की पुष्टि की

19 वीं सदी के अन्त में या 20 वीं सदी की शुरूआत में रूस में करीब 28 लाख औद्योगिक मजदूर थे, जबकि वहां करीब 1 करोड़ किसान परिवार थे। उस वक्त रूस की कुल कामगार पुरूष आबादी करीब 1 करोड़ 55 लाख आंकी गयी थी। 28 लाख औद्योगिक मजदूरों में से यदि हम 1/4 के मोटे अनुमान से महिलाओं और बच्चों को घटा दें तो हमारे पास 21-22 लाख औद्योगिक पुरूष मजदूर बचते हैं। यानि कि औद्योगिक सर्वहारा कुल कामगार पुरूष आबादी का बमुश्किल 13-14% बनता था। परन्तु विशाल किसान आबादी को संगठित करने के प्रयास करने के बजाए बोल्शेविकों ने औद्योगिक सर्वहाराओं को संगठित करने को अपनी प्राथमिकता बनाया। इस बात का यह मतलब नहीं है कि बोल्शविक पार्टी के पास कोई कृषि कार्यक्रम नहीं था या उसका किसानों के बीच जरा भी आधार नहीं था। प्रारम्भ से ही बोल्शेविकों के पास कृषि कार्यक्रम था और वे किसानों के जीवन व संघर्षों के प्रति बहुत संवेदनशील थे। लेकिन तब भी उनका काम मुख्यतः औद्योगिक सर्वहारा के बीच केन्द्रित रहा। बोल्शेविकों की नजर में गिनती में कम होने के बावजूद वर्ग-सचेत औद्योगिक मजदूर क्रान्तिकारी संकट के काल में निर्णायक भूमिका अदा करेंगे। अतः बोल्शेविकों ने अपनी शक्ति मुख्यतः औद्योगिक मजदूरों की वर्गीय चेतना विकसित करने में लगायी।

फरवरी क्रान्ति ने इस नीति को सही साबित किया। ज़ारशाही के खिलाफ फैसलाकुन संघर्षों में औद्योगिक मजदूरों ने एक वर्ग के बतौर दरअसल समाज की अन्य क्रान्तिकारी शक्तियों का नेतृत्व किया। ज़ारशाही की सेना में बगावत करवाने और सैनिकों को जनता के पक्ष में खड़ा करने में पेत्रोग्राद के वर्ग-सचेत मजदूर आन्दोलनकर्ताओं ने निर्णायक भूमिका अदा की। मजदूरों से सीख लेकर सैनिकों व किसानों ने अपनी सोवियतें कायम कीं। नाजुक-निर्णायक मौकों पर वे न केवल मजदूर कमेटियों से सलाहें लेते बल्कि निर्देश भी लेते। उन दिनों रूस के औद्योगिक सर्वहारा ने एक वर्ग की हैसियत से रूसी समाज की अन्य क्रान्तिकारी शक्तियों को राजनीति में शिक्षित किया।

अक्टूबर क्रान्ति, फरवरी क्रान्ति से इस मायने में भी भिन्न है कि वह एक पूर्णतः पूर्व-नियोजित सचेत कार्यवाही थी। इसे सफलतापूर्वक अंजाम देने के लिए किसानों के बड़े हिस्से को अस्थायी सरकार व बुर्जुआ राजसत्ता के खिलाफ खड़ा करना निहायत ज़रूरी था। वर्ग-सचेत मजदूरों ने किसान सोवियतों में बोल्शेविक नारों -- ज़मींदारों व समस्त बड़ी खेती की जब्ती तथा समस्त भूमि का राष्ट्रीयकरण, हमलावर साम्राज्यवादी युद्ध का खात्मा इत्यादि -- का खुलासा किया। इस सही और सघन प्रचार की बदौलत अगस्त 1917 आते-आते गरीब किसान बोल्शेविज्म की ओर झुकने लगे। परिणामस्वरूप जिन पार्टियों का किसानों के बीच दरअसल बड़ा आधार था, समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों, उन पार्टियों में दरारें पैदा हो गयीं। इन संगठनों में वाम धड़े अस्तित्व में आये और वे बोल्शेविकों के नारों के साथ खड़े हो गये। इन सफलताओं ने अक्टूबर आते-आते बुर्जुआ राजसत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए रास्ता साफ किया।

कुल मिलाकर यहाँ निष्कर्ष यह निकलता है कि लगभग डेढ़ दशक तक अपनी सीमित शक्तियों को औद्योगिक मजदूरों में मुख्यतः केन्द्रित करने की बोल्शेविक नीति सही थी। किसानों के बीच बहुत कम आधार होना बोलशेविक पार्टी की एक बहुत बड़ी कमजोरी थी। लेकिन इस कमजोरी के बावजूद वह अक्टूबर 1917 में इसलिए सफल हुई क्योंकि उसने रूसी औद्योगिक सर्वहारा को राजनीति में दीक्षित किया और उसमें नेतृत्वकारी क्षमताएँ पैदा कीं। बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का सार संकलन है कि

> "अक्टूबर क्रान्ति की अगुवाई रूसी मजदूर वर्ग जैसा इंकलाबी वर्ग कर रहा था, एक ऐसा वर्ग जो युद्ध में तप कर तैयार हुआ था, जो कि बहुत छोटे समय में दो क्रान्तियों से गुजर चुका था, और जो कि तीसरी क्रान्ति की पूर्व बेला पर शांति, ज़मीन, मुक्ति एवं समाजवाद के लिए संघर्ष में जनता के नेता के रूप में स्वीकार्य हो चुका था। **यदि क्रान्ति के पास रूसी मजदूर वर्ग जैसा नेता न होता,** एक ऐसा नेता जिसे जनता का विश्वास हासिल था, **तो मजदूरों और किसानों के बीच कोई संश्रय कायम नहीं हो पाता और ऐसे संश्रय के बिना अक्टूबर क्रान्ति की विजय असम्भव थी।"** (History of the CPSU, Kamgar Prakashan, 1985 Ed., पृष्ठ : 212-213, अनुवाद व जोर हमारा)

चीनी क्रान्ति का रास्ता

चीनी क्रान्ति का रास्ता, रूसी क्रांति से बहुत भिन्न है। इस भिन्नता की वजह से एक लम्बे समय तक इसे अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की आलोचनाओं का पात्र बनना पड़ा।

ऐसा नहीं है कि चीनी कम्युनिस्ट और माओ रूसी क्रान्ति के अनुभवों से सीखने को तैयार नहीं थे या फिर सर्वहारा एवं किसानों के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की राय से असहमत थे। चीनी कम्युनिस्ट रूसी क्रान्ति को गौरवान्वित करते थे और सर्वहारा/किसानों की ताकत/कमजोरियों को अच्छी तरह जानते थे। लेकिन इसके साथ-साथ माओ व उनके साथी जड़सूत्रवादी नहीं थे। वे अपने देश-काल की परिस्थितियों के हिसाब से मार्क्सवाद को रचनात्मक ढंग से लागू करने में विश्वास रखते थे।

माओ और उनके साथियों ने पाया कि चीन, यूरोप या क्रान्ति पूर्व रूस से बहुत भिन्न है, कि चीनी समाज अत्यधिक पिछड़ा हुआ है, कि चीन में आधुनिक औद्योगिक सर्वहारा है ही बहुत कम, कि **चीन मूलतः किसानों का देश है।** 1939 में अपने लेख 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी' में माओ बताते हैं कि चीन की 45 करोड़ आबादी में करीब 25-30 लाख आधुनिक औद्योगिक मजदूर हैं। इतनी विशाल आबादी के देश में ये एक अति अल्प समुदाय बनते है। अगर उस वक्त चीनी कामगारों की संख्या को 15 करोड़ माना जाये (सामान्यतः किसी देश की कुल आबादी का 1/3 कामगार होते हैं), तो भी ये कामगार आबादी का मात्र 2% बनते हैं। अगर दुकानों के नौकरों, दस्तकारों और छोटे पैमाने के उत्पादन में लगे मजदूरों को भी औद्योगिक सर्वहारा के साथ मिला दिया जाये तब भी यह आबादी 1 करोड़ 20 लाख के करीब पहुँचती थी। यानी कि कुल कामगार आबादी का 8.5%! इसके बरक्स उन्होंने देखा कि **"किसान - जनता चीन की कुल आबादी का लगभग 80% है और उसकी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आज प्रमुख शक्ति है।"**

ऐसे में सहज और सही निष्कर्ष यही निकलता था कि चीन में जो भी सफल क्रान्तिकारी संघर्ष होने हैं, वे किसानों पर आधारित होंगे, किसान ही इन संघर्षों की मूल शक्ति होंगे। चीनी समाज के पिछड़ेपन और

विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए माओ ने चीन की मुक्ति के लिए रूसी मॉडल से एक सर्वथा भिन्न कार्य-दिशा अपनायी। उन्होंने शंघाई जैसे औद्योगिक केन्द्रों में कम्युनिस्ट पार्टी की मुख्य ताकत को लगाने के बजाय चीन के देहात में पार्टी की मुख्य ताकत लगाई। उन्होंने सर्वहारा वर्ग को चीनी क्रान्ति का नेता और किसानों को चीनी क्रान्ति की मुख्य लड़ाकू शक्ति (main fighting force) बताया। माओ ने कृषि क्रान्ति को चीनी क्रान्ति की धुरी के रूप में व्याख्यायित किया। ऊपरी तौर पर ये सारी बातें ऐसी लगती हैं मानो माओ ने अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की मार्क्स-एंगेल्स के जमाने से स्थापित सोच को उलट दिया हो। ऊपरी तौर पर ये बातें नरोदवाद का चीनी संस्करण लगती हैं। परन्तु ऐसा है नहीं। जहाँ नरोदवादियों के लिए मजदूर एक विकृति था, वहाँ माओ के लिए वह भविष्य का आदमी है और चीनी क्रान्ति का नेता है। माओ की लाईन (चीन में क्रान्ति का मार्ग) दरअसल मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन की सोच का निषेध नहीं, उसका रचनात्मक प्रयोग है, जड़सूत्रवाद का निषेध है।

चीनी कम्युनिस्ट अगर देहात और किसानों में अपना मुख्य कार्य केन्द्रित न करते तो चीन में क्रान्ति असंभव थी। ऐसी अवस्था में चीनी समाज की मुख्य शक्ति को, किसानों को, 'क्वामिंगतांग' इस्तेमाल कर ले जाती और चीनी कम्युनिस्ट हाशिये पर पड़े रह जाते। किसानों के बीच अपना व्यावहारिक काम मुख्यतः केन्द्रित करके, और गरीब किसानों में से भारी पैमाने पर कम्युनिस्ट पार्टी व लाल सेना में भर्ती करके, माओ व उनके साथियों ने विशाल किसान समुदाय को अपने साथ गोलबन्द किया। चीनी क्रान्ति की सफलता के लिए यह एक बहुत अहम् बात थी।

क्या इस नीति से, सर्वहारा की जगह किसानों में कम्युनिस्ट पार्टी के कार्य को मुख्यतः केन्द्रित करने की नीति से, कम्युनिस्ट पार्टी की सर्वहारा चेतना के विकास और गुणवत्ता में कमी नहीं रह गई?

निःसंदेह रह गई। किसानों के पिछड़ेपन की कीमत एक हद तक चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को भी चुकानी पड़ी, लेकिन क्रान्ति को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर देने के व्यावहारिक अनुभवों ने चीनी कम्युनिस्टों की चेतना में जो इजाफा किया उससे किसानी पिछड़ापन व कूपमंडूकता बहुत हद तक धुल गए। और फिर यह सवाल अपने-आप में शुद्ध मानसिक शगल है। चीनी कम्युनिस्ट अपनी इच्छाओं के समाज में काम नहीं कर रहे थे, वे इतिहास द्वारा प्रदत्त एक पिछड़े हुए (किसानों के) देश में काम कर रहे थे, और वहाँ क्रान्ति एक ही तरीके से सफल हो सकती थी — किसानों को लामबन्द करके! यहाँ हम इतना ही कहेंगे कि जुझारू से जुझारू क्रांतिकारियों को भी अपने युग की सीमाओं की कीमत चुकानी पड़ती है, और वे हंसते हुए यह कीमत चुकाते हैं क्योंकि वे समाज को समर्पित व्यावहारिक लोग होते हैं, मानसिक शगल करने वाले किताबी कीड़े नहीं।

भारत सर्वहाराओं का देश है

चीनी क्रान्ति की सफलता के वक्त अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट बिरादरी ने पिछड़े, सामन्ती, अर्द्ध-सामंती देशों के लिये चीनी रास्ते को मॉडल के रूप में स्वीकार लिया। यहाँ सवाल यह उठता है कि आज, आधी शताब्दी बाद, क्या हमें चीनी रास्ते पर ही चलना चाहिये, देहात व किसानों के बीच, अपने संगठनों की मुख्य शक्ति को लगाना चाहिए या फिर माओ की तरह अपने देश-काल की परिस्थितियों का जायज़ा लेना चाहिए और ठोस विश्लेषण से सही नतीजे निकालने चाहिए।

माओ विचारधारा का तकाज़ा है कि जड़सूत्रवादी बनने के बजाय कम्युनिस्टों को देश-दुनिया के विकास के प्रति सजग और अपने कामों में रचनात्मक होना चाहिए। आइये, भारत में विभिन्न वर्गों के आकार पर एक नजर डाली जाए। अपनी बातों को पुष्ट करने के लिए हम जिन आंकड़ों का इस्तेमाल करेंगे वे भारत सरकार द्वारा करायी गयी 1991 की जनगणना के आंकड़े हैं। भारत की प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी शक्तियों का अपना कोई स्वतंत्र राष्ट्रीय सर्वेक्षण नहीं है, अतः हमें भारत सरकार के आंकड़ों पर ही निर्भर होना पड़ेगा। ये आंकड़े 10 वर्ष पुराने हैं, और जब 2001 की जनगणना के आंकड़े सामने आयेंगे तो हमें विश्वास है कि वे हमारी मूल दलीलों को और पुष्ट ही करेंगे।

इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत गाँवों का देश है। 1991 में भारत में 6 लाख 27 हजार गाँव थे और 84 करोड़ 60 लाख आबादी में से, 62 करोड़ 90 लाख लोग गाँवों में रहते थे। यानी कि भारत की 3/4 आबादी

गाँव में रहती है। शेषांश शहरी आबादी कुल आबादी का 1/4 है।

लेकिन इस तथ्य का यह मतलब नहीं निकलता है कि भारत किसानों का देश है। 1991 में भारत में 27 करोड़ 89 लाख मुख्य कामगार आंके गये थे। इनमें 10 करोड़ 71 लाख कृषक थे। यानी देश की कुल कामगार आबादी का 38.4%! वहीं खेतिहर मजदूरों की संख्या 7 करोड़ 38 लाख थी। यानी कि ग्रामीण सर्वहारा 26.4% था।

1991 में विशुद्ध फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूरों की संख्या 97 लाख थी। वैसे समस्त मैन्यूफैक्चरिंग/प्रोसेसिंग व्यवसाय में 2 करोड़ 84 लाख लोग लगे हुए थे (कुल कामगार आबादी के 10.2%)। खनन में 17 लाख (यानी 0.6%) लगे थे तो निर्माण में 54 लाख (1.9%)। अगर इन्हें ग्रामीण सर्वहारा के साथ जोड़ दिया जाये तो वह आबादी करीब 11 करोड़ बैठती है, अर्थात कुल कामगार आबादी का 39%। यहाँ एक बात गौर करने की है कि मैन्युफैक्चरिंग/प्रोसेसिंग, खनन, निर्माण में कार्यरत सभी लोगों को इनमें (सर्वहाराओं में) लिया गया है, हालांकि यहाँ के प्रबन्धक व अधिकारी सर्वहारा नहीं है। अगर इन्हें घटाया जाये तो दूसरे तरफ सेवा क्षेत्र के सर्वहारा को भी जोड़ा जाना चाहिये। गणना की सहूलियत के लिए हमने, सेवा क्षेत्र के सर्वहारा के बराबर उक्त अधिकारियों/प्रबन्धकों माना है। कुल मिलाकर बात यह बनती है भारत में जितने कृषक हैं, उतने ही ग्रामीण व शहरी सर्वहारा हैं।

भारतीय इंकलाब के सदर्भ में, सर्वहारा आज भारतीय समाज का सबसे महत्वपूर्ण वर्ग है, अपनी राजनीतिक चेतना के लिहाज़ से और अपने आकार के लिहाज़ से। आज के भारत में सर्वहारा की स्थिति क्रान्ति पूर्व रूस में सर्वहारा की स्थिति से कहीं बेहतर है। इस वर्ग की अहमियत को भारतीय कम्युनिस्टों को समझना चाहिये, और इसे केन्द्रित करके अपने व्यावहारिक कामों को अंजाम देना चाहिये। कम्युनिस्ट संगठनों में इस वर्ग से जितने ज्यादा सदस्य भरती किये जायें, उतना ही बेहतर होगा।

वैसे एक अन्य दृष्टिकोण से भी भारत के यथार्थ को देखने और समझने की ज़रूरत है। वह राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान की दृष्टि से। 1998-99 में (यदि 1993-1994 की कीमतों को आधार माना जाये) भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा मात्र 29.2% था। इस में वन, पशुपालन और मत्स्य पालन शामिल हैं। इसके बरक्स उद्योग का हिस्सा 24.7% और सेवा क्षेत्र का हिस्सा 46.1% आंका गया। बुर्जुआ अर्थशास्त्रीय तौर-तरीकों में सेवा क्षेत्र का यह 46.1% कुछ अतिरंजित होता है, क्योंकि वे अपनी 'बैलेंस-शीटों' के हिसाब से ढेर सारी मूल्य (value) वृद्धि सेवा क्षेत्र में मानते हैं जो कि कायदे से उद्योग या कृषि के हिस्से में गिनी जानी चाहिए। लेकिन तब भी इतना हर हालत में स्पष्ट है कि उद्योग और सेवा क्षेत्र आज भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनते जा रहे हैं और कृषि अपनी हैसियत खो रही है। ऐसी स्थिति में औद्योगिक सर्वहारा के साथ-साथ सेवा क्षेत्र के मजदूरों में काम भारत के कम्युनिस्ट संगठनों की प्राथमिकता बनता है। होटलों, अस्पतालों, यातायात, बिजली, डाक-तार, दूरसंचार..... के ये मजदूर आधुनिक भारत का निर्माण कर रहे हैं। इनमें से बहुत से 'व्हाईट-कालर वर्कर' हैं, परन्तु इनमें कम्युनिस्टों को अपना आधार बनाना होगा। यह हमारे युग की चुनौती है।

आज भारत में सर्वहारा की भारी मौजूदगी को दिखाकर एक बात तो हम यह स्थापित करना चाहते हैं कि जिन साथियों की नजर में भारत जनवादी क्रांति के चरण में है, उन्हें भी अपनी शक्तियों का मुख्य हिस्सा सर्वहारा (और खासकर औद्योगिक सर्वहारा) के बीच लगाना चाहिए। रूस में, जनवादी क्रांति के चरण में भी बोल्शेविकों ने अपना काम मुख्यतः औद्योगिक मजदूरों के बीच केन्द्रित किया था। और यह नीति बिलकुल सही थी जैसा कि फरवरी क्रान्ति ने प्रमाणित किया। भारत में सर्वहारा की संख्या के हिसाब से स्थिति क्रांति पूर्व रूस से कहीं बेहतर है, भारत में सर्वहारा कुल कामगार आबादी के 2/5 हिस्सा बनते हैं। अर्थात् यदि भारत में जनवादी क्रान्ति होनी भी है, तो भी उसका रास्ता रूसी क्रान्ति से ज्यादा मिलता-जुलता होगा और चीनी क्रान्ति से ज्यादा भिन्न।

वैसे भारत में जो साथी नव जनवादी क्रान्ति का प्रयास कर रहे हैं उन्हें इस बात पर भी गौर करने की जरूरत है, कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी लगातार औद्योगिक सर्वहारा के बीच काम करती रही। अपनी स्थापना के समय से लेकर 1949 में पीकिंग की सत्ता पर कब्जे के समय तक श्वेत क्षेत्रों के औद्योगिक केन्द्रों में चीनी

ार्टी के भूमिगत कार्यकर्ता सर्वहारा को लगातार संगठित करते रहे। परन्तु हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ान्दोलन में उक्त सही नीति से भी अति पर जाकर भटकाव दिखाई देता है। कई साथी अपनी सोच और नंदिन व्यवहार दोनों में, पूर्णतः (मात्र मुख्यतः नहीं) देहात के संदर्भों में जीते हैं। उनकी चेतना में देहात इंकलाबी ंभावनाओं से ओतप्रोत है, जबकि शहर और ट्रेड यूनियनों में काम निम्न बुर्जुआ भटकावों की जन्म-स्थली। ोच और व्यवहार के स्तर पर यह पहुँच (approach) गलत है। नव जनवादी क्रान्ति के मॉडल के हिसाब से ी यह मात्र एकांगी नहीं है, यह एक गम्भीर भटकाव है क्योंकि यह औद्योगिक सर्वहारा को उसी की पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी) से दूर रखता है।

नव जनवादी क्रान्ति के तहत कुछ साथी औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों को संगठित कर रहे हैं। यह एक ागत योग्य बात है, और इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलना चाहिए। लेकिन यहां पर भी पहुंच (approach) की ुछ गलतियां हैं, जिन्हें ठीक करने की जरूरत है। कई साथियों के दिमाग में मजदूरों के बीच काम की छवि ुछ ऐसी है कि वे यहाँ काम इसलिए कर रहे हैं ताकि देहात के काम के लिए मुख्यतः कार्यकर्ता एवं संगठनकर्ता ंकाले जा सकें। इनके मुताबिक जो मजदूर साथी आगे बढ़ जायेंगे, उन्हें देहात को संगठित करने के लिए भेजा ाना है। ऐसी पहुँच दिक्कत तलब है। इसमें कोई दो राय नहीं कि आगे बढ़े हुए मजदूरों को देहात व अन्य त्रों में राजनैतिक कार्यों के अनुभव मिलने चाहिए। लेकिन इससे कहीं महत्वपूर्ण बात यह है कि मजदूरों के ोच काम मजदूर वर्ग की ही चेतना बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए, देहात के लिए कार्यकर्ता निकालना स प्रक्रिया का उप-उत्पाद हो सकता है। नव जनवादी क्रान्ति में भी मजदूर वर्ग क्रान्ति का नेता है। और यह ात समूचे वर्ग के लिए कही जाती है, चन्द कार्यकर्ताओं के लिए ही नहीं। इसलिए कम्युनिस्ट संगठनों की म्मेदारी है कि वे मजदूर वर्ग की राजनीतिक शिक्षा-दीक्षा करें ताकि मजदूर एक वर्ग के बतौर नव जनवादी ान्ति में भी नेतृत्व प्रदान कर सकें।

ारत किस ओर?

21वीं सदी के भारत की वर्गीय संरचना को यदि देखा जाए, तो एक सहज सवाल उठता है। वह यह कि ात्र चार-पांच दशकों में इतना बड़ा सर्वहारा वर्ग कैसे, किन प्रक्रियाओं की बदौलत अस्तित्व में आया? और) व 50 के दशक के किसान समुदाय का आकार अन्य वर्गों के सापेक्ष (निरपेक्ष अर्थों में नहीं) क्यों सिकुड़ या? पिछले 50 वर्षों में ऐसी कौन सी आर्थिक प्रक्रियाएं हैं, जिन्होंने भारत में वर्ग निर्माण (class formation) ी यह दिशा प्रदान की।

कितनी ही जाँच पड़ताल की जाये, कितना ही तर्क-वितर्क किया जाये, अन्ततः जो कारक सामने आते जो प्रक्रिया उद्घाटित होती है, वह वही है जिसके वर्णन से पिछले 150 वर्षों का मार्क्सवादी साहित्य भरा ुआ है -- पूंजीवादी विकास। मार्क्स के अनुसारः

> ".....उत्पादन के औजारों में लगातार क्रान्तिकारी परिवर्तन और उसके फलस्वरूप उत्पादन के सम्बन्धों में, और साथ-साथ समाज के सारे सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बिना पूंजीपति वर्ग जीवित नहीं रह सकता। इसके विपरीत, उत्पादन के पुराने तरीकों को ज्यों का त्यों बनाए रखना पहले के सभी औद्योगिक वर्गों के जीवित रहने की पहली शर्त थी। उत्पादन प्रणाली में निरन्तर क्रान्तिकारी परिवर्तन, सभी सामाजिक अवस्थाओं में लगातार उथल-पुथल, शाश्वत अनिश्चयता और हलचल -- ये सभी चीजें पूँजीवादी युग को पहले के सभी युगों से अलग करती हैं। सभी स्थिर और जड़ीभूत सम्बन्ध, जिनके साथ प्राचीन और पूज्य पूर्वाग्रहों तथा मतों की एक पूरी श्रृंखला होती है, मिटा दिये जाते हैं, और सभी नये बनने वाले सम्बन्ध जड़ीभूत होने के पहले ही पुराने पड़ जाते हैं....."।
>
> "किन्तु पूंजीपति वर्ग ने ऐसे हथियारों को ही नहीं गढ़ा है जो उसका अन्त कर देंगे, बल्कि उसने ऐसे आदमियों को भी पैदा किया है जो इन हथियारों का इस्तेमाल करेंगे - आज के मजदूर, आज का ***सर्वहारा वर्ग***।" ('कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र', मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड 1, भाग-1, प्रगति प्रकाशन, 1978 संस्करण, पृष्ठ 134-138, जोर मूल में)।

दरिद्रता तो प्राक्-पूंजीवादी समाजों का भी लक्षण है। परन्तु पूंजीवाद के अलावा इतिहास की कोई अन्य वेक्त नहीं है जो उज़रती-गुलामों का, सर्वहाराओं का निर्माण करे। जिस भारी गिनती में आज भारत में

उज़रती-मजदूर (मात्र गरीब-दारिद्र लोग नहीं) कार्यरत हैं, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि पिछले कुछ दशकों में भारतीय समाज में पूंजीवाद की शक्तियां काफी क्रियाशील रही हैं।

पिछले चार-पांच दशकों में न केवल उज़रती मजदूरों के एक बड़े वर्ग का निर्माण हुआ है, बल्कि समाज में भी अभूतपूर्व गतिशीलता आई है। यहाँ हम अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए पूंजीवादी विकास की परिघटना की केवल दो ही अभिव्यक्तियों का जिक्र भर करेंगे। सदियों से तथाकथित भारतीय संस्कृति का स्तम्भ माने जाने वाली संस्था — संयुक्त परिवार — पिछले चन्द दशकों में ताश के पत्तों के महल की तरह चरमरा कर ढह गयी है, और बहुत तेजी के साथ भारत में एकल परिवार अस्तित्व में आये हैं। आज अधिकांश भारतीय परिवार रूप और अन्तर्वस्तु दोनों में एकल परिवार बन चुके हैं, जबकि जो शेष संयुक्त परिवार दिखाई पड़ते हैं उनमें भी बड़ी गिनती ऐसे परिवारों की है जहाँ रूप पुराना (संयुक्त) तथा अन्तर्वस्तु नयी (एकल) है। बहुत थोड़े से भारतीय परिवार ही ऐसे बचे हैं जहाँ रूप व अन्तर्वस्तु पुराना (संयुक्त) है, और ऐसे परिवार भी 21 वीं सदी के दूसरे दशक तक बचेंगे, इसमें संदेह है। आखिर ऐसी कौन सी हवाएं थीं जिन्होंने इस संस्था, जो बाढ़, सूखे, युद्धों की उथल-पुथल में भी सदियों से टिकी रही, को इतनी आसानी से ढहा दिया। निःसन्देह ये वही हवाएं हैं जिनका वर्णन हमें कम्युनिस्ट घोषणापत्र में मिलता है।

परम्परागत भारतीय समाज का एक अन्य मजबूत स्तम्भ 'जाति-प्रथा' रही है। यह इतनी मजबूत व जड़ संस्था रही है कि जो भी लोग बाहर से भारत में आकर बसे, चाहे वे किसी भी धर्म के रहे हों या भाईचारे व समता की कोई भी मूल्य-मान्यताएं लेकर आये हों, उन्होंने इसके अनुरूप खुद को ढाल लिया। पिछले कुछ दशकों में इस संस्था में भी नयी अर्न्तवस्तु अस्तित्व में आयी है, हालांकि रूप मूलतः अभी पुराना ही है। नीचे की जातियों - पिछड़ों व दलितों - में आज जो सामाजिक व राजनीतिक गतिशीलता दिखाई दे रही है वह पहले नहीं थी। आज ये जातियाँ न केवल समाज में अपने हैसियत सुधार रही हैं बल्कि इनके तेज-तर्रार सदस्य भारतीय राजसत्ता पर भी अपनी दावेदारी ठोक रहे हैं। "नीची" जातियों की इस गतिशीलता ने सभी 'प्राचीन व पूज्य पूर्वाग्रहों/मतों' की जमीन खिसका दी है। 'स्थिर और जड़ीभूत सम्बन्ध' 'उथल-पुथल, शाश्वत अनिश्चितता और हलचल' के शिकार हैं। कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए यह जरूरी है कि वे उक्त परिवर्तन को जन्म व गति देने वाली शक्ति को ठोस रूप में चिन्हित करें और आन्दोलन को स्पष्ट जवाब दें कि यह पूंजीवाद के विकास की बदौलत हो रहा है, या उसके अभाव (प्राक्-पूंजीवादी जड़ता) की वजह से। हमारा मत है पूंजी इन परिवर्तनों को जन्म व गति दे रही है।

एक अन्य दिलचस्प बात की ओर हम साथियों का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। अंग्रेजों के जाने के बाद भारत में बड़े-बड़े नगर व महानगर अस्तित्व में आये हैं। ये नगर न केवल व्यवसायिक एवं सामाजिक गतिविधियों के गढ़ हैं, बल्कि ये अगल-बगल के देहात की राजनीति के भी केन्द्र बन चुके हैं (देहाती राजनीति के केन्द्र अब प्रमुख गांव और उनमें रहने वाले 'बड़े आदमियों' के बैठकखाने व दरवाजे नहीं रहे)। इस परिवर्तन को कैसे समझा जाये? इसके बारे में मार्क्स कहते हैं:

> "पूंजीपति वर्ग ने ***देहातों को शहरों के अधीन कर दिया*** है। उसने बहुत बड़े-बड़े शहर बसाये हैं और, देहातों की तुलना में शहरों की जनसंख्या में प्रचंड वृद्धि की है, और इस प्रकार जनसंख्या के एक बड़े भाग को देहाती जीवन की जड़ता से मुक्त किया है।" (मार्क्स-एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र', संकलित रचनाएं, खण्ड-1, भाग-1, प्रगति प्रकाशन, 1978 संस्करण, पृष्ठ 134-135, शब्दों पर जोर हमारा)।

अगर विशुद्ध किसानों को ही लिया जाए और उनके जीवन की राजनीतिक गति पर ही केन्द्रित किया जाये, तब भी हमें एक मूलभूत परिवर्तन दिखाई पड़ता है। पिछले दो दशकों में जो बड़े किसान आन्दोलन व किसान संघर्ष हुए हैं, वे 40 और 50 के दशक के किसान संघर्षों से काफी भिन्न हैं। पांच दशक पहले के किसान संघर्षों के मूल मुद्दे जमीन जोतने वाले की, सूदखोरी से मुक्ति, लगान का खात्मा या उसमें कमी, बेगार का खात्मा, उपज में बटाईदारों के ज्यादा बड़े हिस्से के लिये हुआ करते थे। ये संघर्ष साहूकारों और जमींदारों के खिलाफ हुआ करते थे। इन साहूकारों-जमींदारों के खिलाफ संघर्ष न केवल उक्त राजनीतिक-आर्थिक मुद्दों पर होते थे बल्कि सामाजिक उत्पीड़न (किसानों की महिलाओं/बच्चों के साथ दुर्व्यवहार, किसानों से मार-पीट/गाली-गलौच. ....) के खिलाफ भी थे। आम तौर पर शोषक-उत्पीड़क स्वयं गांव-देहात में रहता था या फिर उसका नुमाइंदा

भौतिक तौर पर गांव-जवार में मौजूद होता था। संघर्षों की भूमि भी गांव-खलिहान हुआ करते थे। परन्तु पिछले दो दशकों में किसानों के जो बड़े आन्दोलन हुए हैं, उनके ज्यादातर मुद्दे नये हैं, दुश्मन नया है, और संघर्षों की भौतिक जमीन भी नयी है। हाल के संघर्ष या तो खेती में लागत के सवाल पर हुए हैं या फिर उपज की खरीद अथवा बेहतर दाम के लिये। हाल के संघर्ष बिजली के बिल माफ करवाने के लिये हुए हैं, नहरों के पानी के लिए हुए हैं, डीजल के दामों के सवाल ने किसानों में हलचल पैदा की है, खाद में साब्सिडी, धान-गेहूँ, गन्ने, प्याज .... की खरीद या समर्थन मूल्य के सवाल पर केन्द्रित रहे हैं। इसके अलावा बैंकों के कर्जे (संस्थागत ऋण) न वापिस करना बड़े किसान आन्दोलनों की विषयवस्तु रही है। इन संघर्षों में शत्रु सामान्यतः गांव-देहात में प्रत्यक्षतः मौजूद भी नहीं होता है। इसलिए संघर्षों की भौतिक जमीन खेत-खलिहानों से हटकर शहर से गांव को जोड़ने वाली सड़कें व रेलवे लाईनें, जिला मुख्यालय और सूबाई राजधानियाँ हो गयी हैं। यहाँ अभी हम इन संघर्षों की राजनीति और इनके नेतृत्व के वर्ग चरित्र पर टीका-टिप्पणी नहीं कर रहे हैं। यहाँ हम किसान संघर्षों की प्रकृति में आये परिवर्तन को रेखांकित कर रहे हैं। इस परिवर्तन को स्वीकारने वाला हर संजीदा राजनीतिक कार्यकर्ता निःसन्देह इस परिवर्तन का सबब तलाशेगा। यदि वह इनका मार्क्सवादी विश्लेषण करेगा, तो वह पायेगा कि यह परिवर्तन इसलिए आया है क्योंकि कृषि अब राष्ट्रीय बाजार से जुड़ चुकी है, और बाज़ार की शक्तियों से इस कदर प्रभावित हो रही है कि संस्थागत बैंक, आढ़तिये के बतौर सरकार, और डीज़ल, बिजली, पानी, खाद, बीज की व्यवस्थापक संस्थाएं किसानों की मुख्य शत्रु हो चुकी हैं। कुल मिलाकर यही निष्कर्ष निकलता है कि साहूकार-जमींदार पृष्ठभूमि में सिमटते गये हैं और पूंजीपति व उनकी राजसत्ता मुख्य शत्रु के बतौर सामने आ चुकी है। आज कृषि का संकट मूलतः पूंजीवादी है।

उक्त बातों पर यदि संजीदगी से विचार किया जाये तो एक बुनियादी निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता है। वह यह कि आज भारतीय समाज में मुख्य अन्तर्विरोध सामन्तवाद बनाम व्यापक जनता नहीं रह गया है बल्कि इसका स्थान पूँजी बनाम श्रम के बुनियादी अन्तर्विरोध ने ले लिया है; कि आज भारत में न केवल पूँजीवादी विकास हो रहा है बल्कि भारतीय समाज को मूल गति भी पूँजी दे रही है; कि आज भारत में शोषण का मुख्य रूप पूँजीवादी शोषण है; कि अब भारत में जो क्रान्ति होनी है, वह पूँजीवाद-विरोधी साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्ति है, न कि सामन्तवाद-विरोधी साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्ति।

ऐसे में भारतीय क्रान्ति की पूरी व्यूह रचना ही बदल जाती है। चार वर्गों का क्रान्तिकारी संश्रय अब भारत में सम्भव नहीं है। तीन वर्गों का क्रान्तिकारी संश्रय ही अस्तित्व में आयेगा और सर्वहारा न केवल इस संश्रय में नेतृत्व प्रदान करेगा, बल्कि वह (शहरी व ग्रामीण सर्वहारा) इसकी मुख्य लड़ाकू शक्ति भी बनेगा। भारतीय समाज की वर्तमान वर्गीय संरचना एवं उत्पादन सम्बन्ध कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों से माँग कर रहे हैं कि वे अपने काम को सर्वहारा में केन्द्रित करें और औद्योगिक सर्वहारा पर विशेष ध्यान दें। कम्युनिस्ट पार्टी-संगठनों में जितनी ज्यादा तादाद में औद्योगिक मजदूर होंगे उतना ही सामूहिकता के मूल्य हमारे आन्दोलन में मजबूत होंगे। एक लम्बे अरसे से हमारा आन्दोलन टूट-बिखराव का शिकार रहा है -- संगठनों में अन्तर्विरोध उठने के बाद हल होने एवं उच्चतर एकता को जन्म देने के बजाये फूटों को जन्म देते रहे हैं -- और यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि इसमें किसानी स्वायत्तता के मूल्यों (अपनी खेती अपने तरीके से करने की मानसिकता) की भी भूमिका रही है। इस कुप्रवृति से उबरने के लिए यह ज़रूरी है कि हमारे पार्टी-संगठनों में सर्वहारा चेतना एवं सर्वहारा अनुशासन मजबूत जड़ें जमाये। पार्टी-संगठनों में बड़े पैमाने के उत्पादन में दीक्षित औद्योगिक मजदूरों की भौतिक उपस्थिति, इस सकारात्मक प्रवृति को बढ़ावा देने में सहायक होगी।

****

निष्कर्ष के बतौर हम एक ही बात कहना चाहेंगे। वह यह कि भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को माओ के अंधभक्त बनने के बजाये माओ के लायक शिष्य बनना चाहिए। और जैसे माओ ने जड़सूत्रवादियों की तरह रूसी क्रान्ति की नकल करने से इंकार किया और अपने देश की ठोस परिस्थितियों के हिसाब से क्रांति की व्यावहारिक योजनाएं बनायीं, वैसे ही भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को चीनी क्रान्ति की नकल करने का प्रयास करने के बजाय भारत की आज (21 वीं सदी) की ठोस परिस्थितियों के अनुरूप व्यावहारिक योजनाएं

बनानी चाहिए।

आज के भारत में सर्वहारा (ग्रामीण और शहरी दोनों) उभरता हुआ, विकसित होता हुआ वर्ग है। किसान समुदाय विखंडन का शिकार हो रहा है। पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ ऐसा होना अपरिहार्य है। ऐसी स्थिति में हमें (कम्युनिस्ट संगठनों को) अपने सीमित संसाधन सर्वहारा में ही मुख्यतः केन्द्रित करने चाहिए। और यदि हमारा आकलन यह है कि हम किसी इलाके में समूचे सर्वहारा में भी काम करने की स्थिति में नहीं हैं, तब हमें बिल्कुल निष्ठुर होकर अपनी शक्तियाँ औद्योगिक सर्वहारा के बीच केन्द्रित करनी चाहिए। ■

परिशिष्ट - 1 भारत में मुख्य (main) कामगारों के आंकड़े (1991 की जनगणना के आधार पर)

कामगारों की श्रेणी	संख्या (लाख में)	कुल कामगार आबादी का प्रतिशत हिस्सा
कृषक	10,71	38.4
कृषि-मजदूर	7,38	26.4
पशुपालन, वन, मत्स्य, बगानों.....	53	1.9
खनन	17	0.6
मैन्यूफैक्चर/प्रोसेसिंग	2,84	10.2
निर्माण	54	1.9
व्यापार/वाणिज्य	2,08	7.5
परिवहन/भण्डारण/संचार	78	2.8
अन्य सेवाएं	2,85	10.2
मुख्य कामगारों (main workers) की कुल संख्या	27,89	100.00